प्रसाद साहित्य में अन्तर्द्वन्द्व एवम् मनस्तत्व

डॉ0 अनिता जैन
कार्यकारी प्राचार्या, जे0ए0वी0जी0 डिग्री कॉलेज, बड़ौत,

सारांश

प्रसाद–साहित्य में अन्तर्द्वन्द्व का प्राधान्य है। इसके मूल में पारिवारिक संघर्श और संकट, असमय में ही प्रियजनों का वियोग, देष की पराधीनता स्वतन्त्रता–संग्राम की असफलताएं, सामाजिक विशमताएँ आदि हो सकती हैं। साथ ही प्रसाद का सारा जीवन ही संघर्शमय रहा और वें अपने परिवार की स्थिति सुधारने में लगे रहे। अतः इन सभी कारणों से उनकी रचनाओं में हार्दिक एवं मानसिक संघर्श की प्रधानता है। परन्तु यह अन्तर्द्वन्द्व एवं अन्तर्मन्थन केवल प्रसाद के संघर्शमय जीवन का ही चित्र प्रस्तुत नहीं करता, अपितु तत्कालीन मानव–समाज की आन्तरिक स्थिति का भी द्योतक है। उनके साहित्य में केवल बाहरी द्वन्द्व ही भरा हुआ नहीं है अपितु उसी मात्रा में अर्न्द्वन्द्व भी विद्यमान है और इन दोनों के समुचित सम्मिश्रण के कारण ही उनका साहित्य मानवता के उच्चतम आदर्ष का पूर्ण व्यंजक तथा मानवता की एक बड़ी भारी पूंजी है।

मुख्य षब्द– *अन्तर्मन्थन, अन्तःप्रकृति, गुम्फित, समवेत, संष्लेशणात्मक संघट्ट, प्रतिदान, पराड0मुख, वात्याचक्र, निसर्ग, प्रश्रय आदि।*

शोध पत्र का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैः

डॉ0 अनिता जैन,
''प्रसाद साहित्य में अन्तर्द्वन्द्व एवम् मनस्तत्व'',
शोध मंथन जून 2017,
पेज सं0 130–135
http://anubooks.com/?page_id=2030
Artcile No.21(SM428)

प्रस्तावना

शोध प्रविधि– प्रस्तावित शोध में मननात्मक शोध की निरूपणात्मक, व्याख्यात्मक और मूल्यांकन परक विधियों को अपनाया गया है। यहाँ प्रमुखतया शोधपरक वस्तुविष्ठ विधि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य– आधुनिक जीवन अनेक विसंगतियों से ओत–प्रोत है। वर्तमान जीवन में व्याप्त विश्रृंखलता, विद्रूपता, भ्रष्टाचार, अन्याय, आतंकवाद, महंगाई एवं बौद्धिकता ने मानव–जीवन, समाज, सभ्यता एवं संस्कृति को खोखला कर दिया है। मानव–जीवन अनेक कुंठाओं, संत्रास एवं निराशा के अंधकार से युक्त है, प्रकाश की कही कोई किरण दृष्टिगत नहीं। ऐसी स्थिति में प्रसाद–साहित्य चन्द्र–किरण बनकर मानव के मार्ग को आलोकित करता है। मानव–जीवन एवं उनके आन्तरिक संघर्श से सम्बन्धित विचार उनके साहित्य में स्थान–स्थान पर व्यक्त हुए है। उन सभी स्थलों पर हमें मानव–हदय में चलने वाली भावनाओं के संघर्श का भी पता चल जाता है। लेकिन प्रसाद जी आनन्दवादी साहित्यकार हैं इसलिये किसी भी प्रकार की दुष्प्रवत्ति को प्रश्रय देकर उसे पोषित करना अपने मूल उद्देश्य से विपरीत दिशा में गमन है। इस सिद्धि के लिये क्षमा, गांभीर्य, अहिंसा, पश्चात्ताप जैसे गुणों की अधिक गुंजाइश है और इन गुणों की प्रशंसा प्रसाद जी ने सर्वत्र दिखायी है। धीरता, वीरता और गंभीरता–पुरूष के ये मूल गुण कहे गये है। प्रसाद को अन्तर्द्वन्द्व उसी सीमा तक इष्ट है जहाँ तक वह पुरूष के व्यक्तित्व का निर्माण करने वाले उपादानों के घोर विरोध में न हो। आपके पात्रों में अन्तर्द्वन्द्व की समाप्ति प्रायः जीवन के श्रेष्ठ गुणों के मूल्यों के साक्षात्कार या नवीन विश्वासों से उनके अभिसिंचन के साथ होती है। यही स्पष्ट करना प्रस्तुत शोध–पत्र का मुख्य उद्देश्य है।

प्रसाद जी एक अलौकिक–प्रतिभा एवं उत्कृष्ट बुद्धि सम्पन्न व्यक्ति थे तथा एक आदर्श व्यक्तित्व लेकर अवतीर्ण हुए थे। उनकी प्रतिभा का विकास अनेक दिशाओं में हुआ है। उन्होंने हिन्दी साहित्य की सर्वागीण उन्नति करते हुए उसके भंडार को अपनी विविध रचनाओं से परिपूर्ण किया है। आप अपने युग की समस्त प्रगतिशील शक्तियों से अवगत थे। इसी कारण आप एक जागरूक नेता की भांति साहित्य के माध्यम से समाज की उन्नति, समाज के कल्याण एवं मानवता के उत्थान के लिये सदैव प्रयत्न करते रहे।

विषय प्रवेशः मनस्तत्व के अध्ययन का मुख्य क्षेत्र मनोविज्ञान है। मनोविज्ञान और साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है, अतः साहित्य की प्रकृत परिधि में आये मनस्तत्त्व का अध्ययन यहाँ प्रसंग–प्राप्त है। साहित्य और मनोविज्ञान की कार्य–प्रणाली और इन दोनों क्षेत्रों की मूल प्रकषति में जितना भेद है उतना ही दोनों के द्वारा गृहीत मनस्तत्व के निरूपण और उसकी प्रणाली में भी। साहित्य वषत्तियों, भावों, विचारों, कल्पनाओं आदि के गुम्फित या समवेत सौन्दर्य का मार्मिक उद्घाटन करता है, जबकि मनोविज्ञान प्रयोग–परीक्षण आदि द्वारा उनका विज्ञान की वस्तुनिश्ठ या तथ्य शोधात्मक प्रणाली पर, निर्मोह अध्ययन करता है। सृजनात्मक साहित्य की मूल प्रकृति संश्लेशणात्मक होती है और मनोविज्ञान की विश्लेषणात्मक। साहित्य के रस–चक्र पर दृष्टिपात करने पर दिखाई पड़ेगा कि रस के प्रमुख उपकरण आश्रय, आलम्बन, उद्दीपन, स्थायीभाव, संचारीभाव, अनुभाव

आदि है। इनमें से अन्तिम तीन पर मनोविज्ञान–वेत्ता का प्रमुख कार्य–क्षेत्र है, वही कवि अथवा साहित्य–काव्य का भी। इस सामान्य धरातल के होते हुए भी मुख्यतः भाव, विचार और कल्पना से ही साहित्य का अंतरंग निर्मित होता है। साहित्य में भाव–व्यंजना और चरित्र–सृष्टि में मनस्तत्व का सबसे अधिक उपयोग होता है। कवि अथवा पात्र के मन में कौन से भाव (स्थायी–संचारी) किस प्रकार किस रूप में कार्य कर रहे हैं, और वे किस रूप में (अनुभाव) बाहर व्यक्त हो रहे हैं, इसका यथातथ्य निरूपण साहित्य में यथार्थ या सत्य की प्रतिष्ठा और स्वाभाविकता की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है। हमारे मन में एक भाव का सहज प्रवाह अथवा संचार होता है, कभी दो या अनेक भावों का सहचार संघट्ट या संघर्ष होता है और शारीरिक चेष्टाओं या व्यापारों में वह बाहर प्रकाशित होता है। आन्तरिक भावों के इस क्रियाकलाप और बाहरी चेष्टाओं का अध्ययन ही मनस्तत्व का साहित्योपयोगी अध्ययन है। फील्डिंग और हड़सन ने 'मानव–प्रकृति का निकटतम और गंभीरतम ज्ञान पात्र–स्रष्टा के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण कहा है।'[1] किन्तु, भारतीय चरित्र–चित्रण में मनोविश्लेषण सीमातीत रूप में आवश्यक नहीं समझा गया। आचार्य वाजपेयी जी की धारणा है कि 'वह तो वस्तु–चित्र मात्र है, यथार्थवादी खोज है, विज्ञान का विषय है जो साहित्य के क्षेत्र में निरर्थक भी हो सकती हे। रस ही मुख्य है। चरित्र–निर्देश अपेक्षाकृत गौण वस्तु है और वस्तु–विन्यास तो और भी ऊपरी वस्तु है।'[2]

मनस्तत्व 'प्रसाद'–साहित्य के अध्ययन का रोचक पक्ष है। 'प्रसाद' ने शताधिक पुरूष व नारी (बालक भी सम्मिलित हैं) पात्रों का निर्माण किया है। जो विविध जीवन परिस्थितियों, व्यवसायों, परिवेशों व वैचित्रयपूर्ण मनस्थितियों से सम्बन्धित है। इतनी विशाल सृष्टि के पात्रों का स्वरूप स्थिर करना और उनके व्यक्तित्व को उभारना तभी संभव है जब 'प्रसाद' अपने आपको कल्पना के बल से उनकी मनःस्थिति में डाल सकें। इस समस्त क्रिया–कलाप में मानव–मन के अध्ययन के प्रति तीव्र–गंभीर रूचि निहित है। आयु–भेद, परिस्थिति–भेद और मनोविकास–भेद से सबका मनोविज्ञान एक–दूसरे से पृथक है। 'प्रसाद' की सब पात्र–सृष्टियां मनोविज्ञान की दृष्टि से पूर्ण त्रुटिहीन, निर्दोष है या नहीं, यह तो प्रयोगात्मक मनोविज्ञान से ही स्थिर हो सकता है। यहां तो केवल क्षेत्र–विस्तार व हमारे मन पर पड़ी हुई पात्रों की अपील के बल पर ही सामान्य रूप में कुछ कह सकना सम्भव है। उपलक्षण पद्धति पर चलकर केवल कुछ प्रमुख पात्रों के विश्लेषण के द्वारा ही हम इस तत्व के स्वरूप पर अपनी सामूहिक धारणा स्थिर करेंगे।

प्रसाद जी ने अपने अन्तर्द्वन्द्व एवं अन्तर्मन्थन को प्रकट करने के लिये अपने नाटकों में कुछ विशेष प्रकार के पात्रों की सृष्टि की है, जो यद्यपि ऐतिहासिक हैं, फिर भी उनके चरित्र का विकास प्रसाद की मनोवृत्ति के आधार पर हुआ है। इसी कारण उनमें बाह्य अर्न्द्वन्द्व की अपेक्षा अर्न्द्वन्द्व का ही प्राधान्य है। 'अजातशत्रु' का बिम्बसार, 'कामना' का विवेक, 'स्कन्दगुप्त' के मातृगुप्त और पर्णदत्त, 'जनमेजय का नागयज्ञ' के सरमा और आस्तीक, 'चन्द्रगुप्त' का चाणक्य, मालविका और ध्रुवस्वामिनी आदि ऐसे ही पात्र हैं जिनका जीवन संकल्प–विकल्प पूर्ण अन्तर्द्वन्द्व से भरा हुआ है। उदाहरण के लिये 'अज्ञातशत्रु' के बिम्बसार का यह कथन दृष्टव्य है– "ओह जीवन की क्षणभंगुरता देखकर भी मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है। ————मनुष्य व्यर्थ महत्व की

आकांक्षा में मरता है, अपनी नींची किन्तु सुदृढ़ स्थिति से उसे सन्तोष नहीं होता, नीचे से ऊंचे चढ़ना ही चाहता है, चाहे फिर गिरे भी तो क्या।"[3]

इन पात्रों के आकर्षण का मुख्य आधार उनके जीवन की कोई गहरी गुत्थी या वैषम्य है जिसके परिणाम स्वरूप उनका मनोविज्ञान अत्यन्त जटिल व असाधारण हो गया है। चरित्रों की यही जटिलता और असाधारणता उन्हें इतना रोचक बना देती है। उदाहरणार्थ– देवसेना स्कन्द की प्रणयिनी है। स्कन्द ने हूणों से मालव की रक्षा की है। अब यदि बह उससे विवाह करती है तो लोकापवाद उठेगा कि देवसेना ने अपने भाई बंधुवर्मा के त्याग का प्रतिदान लिया है। उधर विजया रूप, धन पर गर्वित है, पैसे के बल पर द्वेष से पीड़ित है। सब मार्ग बन्द हैं। यही जीवन की गुत्थी है जो जलकर भी न खुले। विजया रूप और धन से स्कन्द को खरीदना चाहती है, स्कन्द नहीं मिल पा रहा है तो उसे नीचा दिखाने के लिये भटार्क का वरण करती है, फिर अपने कोष से स्कन्द को खरीदना चाहती है। इसी वात्याचक्र में वह तिनके सी फंस जाती है और आत्महत्या कर लेती है। 'चाणक्य' सार्वभौम ब्राहमण का प्रतीक है। आर्य–साम्राज्य के निर्माण में लगा है, पर इन बाह्य प्रचंड कर्म के नीचे गहरे मन की तहों में सुवासिनी की वासना दबी पड़ी है। मालविका चन्द्रगुप्त पर अर्पित है और अंत समय यह शरीर प्रेमी के काम आ जाये इसलिये चन्दग्रुप्त को राक्षस के शड़यन्त्र से बचाने के लिये स्वयं उसकी शय्या पर सोकर काल्पनिक सुख को भोगकर स्वर्ग सिधार जाती है। ध्रुवस्वामिनी पवित्र गुप्त–साम्राज्य की कुलवधु होकर भी क्लीव रामगुप्त के साथ नारकीय जीवन व्यतीत कर रही है। उसका सच्चा प्रेमी है चन्द्रगुप्त जो रामगुप्त का भाई है।

इसी प्रकार के मानव–जीवन एवं उसके आन्तरिक संघर्ष से सम्बन्धित विचार उनके नाटकों में स्थान–स्थान पर व्यक्त हुए हैं।[4] उन सभी स्थलों पर हमें मानव–हष्दय में चलने वाली भावनाओं के संघर्श का भी पता चल जाता है।

नाटकों के अतिरिक्त उनकी कहानी एवं उपन्यासों में भी अन्तर्द्वन्द्व एवं अन्तर्मन्थन की प्रधानता है। उनकी अन्तर्द्वन्द्व प्रधान कहानियों में से 'आकाशदीप', देवदासी, आंधी, पुरस्कार, 'मदन–मृणालिनी' आदि प्रसिद्धा है[5] इन कहानियों में सर्वत्र मानव–जीवन की ऊंची–नीची स्थितियों उनमें व्याप्त भावनाओं एवं विचारों तथा हदयस्थ भाव संघर्षों के दर्षन होते हैं। यही दषा प्रसाद जी के उपन्यासों की है। उनके 'कंकाल' तथा 'तितली' उपन्यास तो अन्तर्द्वन्द्व के साक्षात मूर्तिमन्त रूप है। 'कंकाल' उपन्यास के मंगल, विजय, यमुना, घण्टी, किशोरी आदि अधिकांश पात्र अन्तर्द्वन्द्व प्रधान है। उनके जीवन में निरन्तर मानसिक–संघर्ष चलता रहता है, वें समाज की आंखों में धूल झोंककर भी अपने मन एवं हदय के भागवत संघर्ष में अन्त तक पड़े रहते हैं। यही दशा तितली उपन्यास की भी है, जिसमें इन्द्रदेव, शैला, मधुबन, तितली आदि के मानसिक–संघर्ष एवं हदयगत उथल–पुथल का चित्रण करते हुए प्रसाद ने मानव–जीवन में व्याप्त अन्तर्द्वन्द्व के सजीव चित्र अंकित किये हैं।

प्रसाद के नाटक एवं कथासाहित्य के अतिरिक्त उनके काव्य में भी अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता है। उनकी आरम्भिक रचनाओं में से प्रेम–राज्य, प्रेम–पथिक, करूणालय, महाराणा का महत्व और झरना में संकलित अनेक कविताओं में हदय के विप्लव एवं मानवीय भावनाओं के संघर्ष का रूप

विद्यमान है। जिसमें अन्तःकरण की प्रेम–सम्बन्धी भावनायें, वासनात्मक–मन की चंचलता, चित्त वर्षत्तियों की विविधता, व्यक्ति मन की वेदनात्मक अनुभूति आदि का चित्रण करते हुए कवि ने मानव–जीवन के संघर्षपूर्ण चित्र अंकित किये हैं और उन चित्रों में अन्तर्द्वन्द्व को प्रमुख स्थान दिया है।

'आसू' काव्य को पढ़कर तो लगता है जैसे मानव अन्तःकरण के सजीव चित्र प्रस्तुत करने के लिये ही इसकी रचना की गई है। उसकी सारी कविता अन्तर्द्वन्द्व एवं अन्तर्मन्थन का ही शब्दरूप हैं और उसमें हृदय की उन प्रेममयी भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई हैं जो यौवन को झकझोर डालती हैं। जिनके संघर्ष में पड़कर असाधारण–मानव भी कुछ क्षणों के लिये तड़प उठता है। 'आंसू' की आरम्भिक पंक्ति– "इस करूणा–कलित हृदय में अब विकल रागिनी बजती"[6] में ही अन्तर्द्वन्द्व का अत्यन्त सहज चित्रण हैं। 'आंसू' के बाद 'लहर' कविता संग्रह में भी 'आत्मकथा', 'अशोक की चिन्ता', 'प्रलय की छाया', आदि कविताओं में तो अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता है ही, इनके अतिरिक्त 'हे 'सागर संगत अरूण नील', 'वे कुछ दिन' कितने सुन्दर थे'[7] आदि कविताओं में भी मानव–जगत के सतत संघर्ष, असफलता, निराशा, व्यथा–वेदना आदि का वर्णन हुआ है। जिनमें हृदय की अतृप्त वासनाओं के विप्लव एवं मानसिक उथल–पुथल के सजीव चित्र विद्यमान हैं।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि उनके साहित्यिक–पात्रों के जीवन में कोई गहरी गुत्थी, विषमता, ग्रन्थि, प्रश्न या दाह है। "पात्र की इसी विशेषता को केन्द्र में रखकर प्रसाद ने उनके मनस्तत्व का अध्ययन, स्रष्टा कलाकार की हैसियत से प्रस्तुत किया है, केवल मन की सीवन उधेड़कर जीवन की स्थूल यर्थाथता का तथ्यात्मक ज्ञान मात्र प्राप्त करने के उद्देश्य से नहीं। पात्रों का वह मनोविज्ञान–सम्मत अंश उनके समग्र अस्तित्व में घुल–मिलकर उपस्थित हुआ है, अलग से कटे हुए रूप में नहीं।"[8] प्रसाद जी ने चेतन–अवचेतन और अचेतन मन के सभी स्तरों पर चलने वाली गतिविधियों का सूक्ष्म निरूपण किया है। तैल–धार के समान मन के अखण्ड प्रवाह की भी झलक कही–कही मिलती है। इसी प्रकार अवचेतन मन का क्रिया–कलाप भी चित्रित हुआ है। पात्रों के आत्म–विश्लेषण के अवसरों पर प्रसाद ने मन के दुर्भेघ–स्तरों का भी गहरा परिचय दिया है। उन्होंने 'वेश्या' (तितली पृष्ठ 192–93) 'चोर' (अजातशत्रु पृष्ठ 80), 'मृत्यु से पूर्व की गर्भिणी (कंकाल, पृष्ठ 58, 59), 'वैरागी' (वैरागी कहानी) रूप–गर्विता नारी (कमला, लहर, सालवती) 'बन्दी' ('आकाशदीप' कहानी का आरम्भ), 'भूतभावना ग्रस्त' (तितली–मधुबन का बालक मोहन) व 'कुमारी' (कंकाल पृष्ठ 119) के मनोविज्ञान का भी सुन्दर परिचय दिया है।

सूक्ष्म–मनोविज्ञान के निदर्शक कुछ अन्य संकेत भी मिलते हैं। जैसे 'अपने को कोसना', 'प्रेमावेश में आत्म–प्रसार का अनुभव करते हुए अपने प्रिय के साथ सर्वत्र व्याप्त हो जाने की भावना करना', 'स्तम्भित या ठगे से रहना' 'शून्यता का अनुभव करते हुए अपना ही शब्द न सुन पाना', 'दण्ड पाकर सुख का अनुभव करना', 'अंधकार में अपने प्रिय व्यक्ति की पुकार सुनना', 'नौकर बनने में सुख का अनुभव करना'.....। आदि व्यापारों के द्वारा प्रसाद जी ने मनोविज्ञान की अत्यन्त बारीक सजगता के प्रति हमें आश्वस्त किया है। सामान्य स्त्री–प्रकृति व मनोविज्ञान के भी कुछ अत्यन्त रोचक उदाहरण अनेक स्थलों पर मिलते हैं। संतान–प्राप्ति के नारी–सुलभ कामना से

सम्बन्धित मनोविज्ञान का भी परिचय दिया गया है, स्त्री को धन से कितना संतोष होता है, यह भी बताया गया है कि स्त्री शक्ति, महत्व के आगे झुकती है, नारी हृदय का प्रणय में मनोविज्ञान कितना विषम हो जाता है, रूप जाने पर धनी नारी धन को संभालती है और रूप–यौवन की रक्षा के लिये सन्तान का भी त्याग कर देती है। यह वैचित्रय भी दिखाया है।

इसके अतिरिक्त प्रसाद जी ने 'बालक' और पशु के मनोविज्ञान का भी सूक्ष्म परिचय दिया है। प्रसाद–साहित्य के अनेक पात्रों में अन्तर्द्वन्द्व का विधान हुआ है, जो मनोविज्ञान से ही सम्बन्धित है। पर वह प्रसाद की साहित्यिक दृष्टि वह जीवन दृष्टि से मर्यादित है। वस्तुतः अन्तर्द्वन्द्व का समावेश, प्रसाद पूर्व के साहित्य को देखते हुए, पर्याप्त संतोशजनक मात्रा में दिखाई पड़ता है और यह "प्रसाद की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में आंका जाता है। पाश्चात्य कृतियों में जहाँ जीवन की तरह साहित्य में भी संघर्ष या द्वन्द्व का सर्वोपरि महत्व है।"[9] द्वन्द्व या संघर्ष का जैसा स्वरूप मिलता है वैसा प्रसाद जी की कृतियों में संभवतः न मिलें। डा0 रामअवध द्विवेदी ने लिखा है कि "प्रसाद से पाश्चात्य ढ़ंग के अन्र्द्वन्द्व की अपेक्षा करने वालों को संभवतः निराश ही लौटना पड़ेगा"[10] पर जैसा कि वाजपेयी जी की मान्यता है, "अधिक मनोर्द्वन्द्व साहित्य के प्रकृत क्षेत्र की अपनी वस्तु भी नही है। अतः उसका अभाव कोई गहरी हानि भी नहीं"[11] इस सम्बन्ध में मैं मात्र यही कह सकती हूँ कि प्रसाद जी भीषण मनोद्वन्द्व चित्रित करने की कला में पूर्णतया निष्णात थे।

संदर्भ सूची–

1– R.A. SOTT JAMES: The making of literature Page No. 372

Hundsun:- An Introduction to the Study of literature Page No. 151

2– आचार्य नंद दुलारे वाजपेयीः– हिन्दी साहित्य 20वीं शताब्दी पृष्ठ 281

3– जयशंकर प्रसाद 'अजातशत्रु' पृष्ठ 28

4– जयशंकर प्रसाद, क्रमशः, 'कामना' पृष्ठ 25, 26, 'स्कन्दगुप्त' पृष्ठ 23, 24, 118, 'चन्द्रगुप्त' पृष्ठ 87, 175

5– जयशंकर प्रसाद, क्रमशः, 'आकाशदीप' कहानी संग्रह पृष्ठ 87, 'आंधी' पृष्ठ 112, 'छाया' पृष्ठ 103

6– जयशंकर प्रसाद 'आंसू' पृष्ठ 78

7– जयशंकर प्रसाद 'लहर' पृष्ठ 15, 27, 31

8– डा0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल तरूण 'जयशंकर प्रसाद वस्तु और कला' पृष्ठ 170

9– 'साहित्यालोचन' पृष्ठ 136, 137

10– 'प्रसाद' (प्रसाद विशेषांक काशी) में डा0 रामअवध द्ववेदी का लेख

11– आचार्य नन्द दुलारी वाजपेयी 'आधुनिक साहित्य'